इकाई 1 18वीं शताब्दी के मध्य की भारतीय राजनीति

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है कि 18वीं सदी के मध्य के मुख्य राजनैतिक घटनाक्रम से आपका परिचय कराना। यहाँ पर हम एक राजनीतिक नक्शे की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे जिसको आगामी इकाइयों में भरा जायेगा। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित शीर्षकों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे:

- मुगल साम्राज्य का पतन,
- मुगल प्रांतों की क्षेत्रीय शक्तियों का हैदराबाद, बंगाल और अवध के रूप में उदय,
- मराठों, जाटों, सिक्खों और अफगानों के नये राज्यों का उदय,
- स्वतन्त्र राज्यों के रूप में मैसूर, राजपूत राज्यों तथा केरल का इतिहास, और
- औपनिवेशिक साम्राज्य का प्रारंभ।

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हमारे अध्ययन का काल 1740 से 1773 तक है। प्रथम कर्नाटक युद्ध तथा नादिर शाह का भारत पर आक्रमण इस काल की प्रारंभिक ऐतिहासिक घटनायें थीं तथा वारेन हैस्टिंग के शासन काल के दौरान राजनैतिक पुनर्गठन इसका अन्तिम पड़ाव था।

मुगल साम्राज्य का पतन इस इकाई का प्रथम भाग है। यह एक लम्बी चलने वाली प्रक्रिया थी, जिसमें बहुत से कारकों ने योगदान किया। 1739 में नादिरशाह के आक्रमण तथा दिल्ली में नर संहार ने पहले से जर्जर होते मुगल साम्राज्य को और कमजोर बना दिया। आर्थिक संकट सहित अन्य कारणों ने मुगल साम्राज्य के पतन में योगदान किया। यद्यपि मुगल साम्राज्य जीवित न रह सका परन्तु इसकी संस्थायें तथा परम्परायें क्षेत्रीय राज्यों और ब्रिटिश प्रांतों में निरंतर जारी रहीं। मुगल प्रशासन की परम्पराओं को विशेषकर भू-राजस्व में अपना लिया गया था। दूसरा भाग, क्षेत्रीय शक्तियों का उदय संभवत: सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इनका वर्गीकरण तीन प्रकार के राज्य समूहों में किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी में हैदराबाद, बंगाल तथा अवध 3 उत्तराधिकारी राज्य थे जो कभी मुगल साम्राज्य 3 प्रांत थे तथा साम्राज्य से अलग होकर स्वतंत्र राज्य बन गये। जाटों, मराठों, सिक्खों तथा अफगानों के द्वारा नये राज्यों का निर्माण किया गया, इनमें से कुछ राज्यों के निर्माण की इस प्रक्रिया में शाही माँगों के विरुद्ध लोकप्रिय किसान आंदोलनों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। तीसरे वर्ग में मैसूर, राजपूतों तथा केरल के वे स्वतंत्र राज्य आते थे जिन्हें गलत रूप से ''हिन्दू राजनैतिक व्यवस्था'' वाले राज्य कहा गया है। ये क्षेत्रीय शक्तियाँ अंग्रेजों को देश से बाहर रखने में असफल क्यों हुई ? इस इकाई में इनकी कुछ निर्णायक कमजोरियों की ओर इंगित किया गया a।

अंतिम भाग के रूप में ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक व्यापारिक कम्पनी से राजनैतिक सत्ता के रूप में संक्रमण था। हम इस संक्रमण का और परिणामस्वरूप दक्षिण भारत तथा बंगाल में होने वाले संघर्षों का क्रमबद्ध तरीके से विवेचन करेंगे।

1.2 अठारहवीं सदी : एक अन्धकारमय युग ?

अभी हाल तक 18वीं सदी को एक अन्धकारमय युग के रूप चित्रित किया गया क्योंकि उस समय अव्यवस्था तथा अराजकता का शासन था। मुगल साम्राज्य धराशायी हो गया, क्षेत्रीय शक्तियाँ साम्राज्य को स्थापित करने में असफल रहीं तथा 18वीं सदी के अन्त में ब्रिटिश सर्वोच्चता स्थापित हो जाने के साथ ही स्थायित्व कायम हो पाया।

भारतीय इतिहास पर काम करने वाले कैम्ब्रिज स्कूल के इतिहासकारों और उनके समर्थक भारतीय इतिहासकारों ने 18वीं शताब्दी को अन्धकारमय युग कहा तथा इसकी तुलना में भारत में ब्रिटिश शासन को एक वरदान बताया। इस संदर्भ में जादुनाथ सरकार द्वारा अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ बंगाल भाग-II में लिखी गयी निम्नलिखित पंक्तियों को उद्धृत करना उपयोगी होगा :

"23 जून 1757 को भारत के मध्य युग का अन्त हुआ तथा आधुनिक युग का प्रारंभ ...... प्लासी से वारेन हैस्टिंग तक के 20 वर्षों में ...... पश्चिम की नयी गतिशीलता के सम्पर्क में आने से सभी पुनर्जीवित हो उठे।''

इस प्रकार के विचारों को स्वीकार करने में कई समस्यायें हैं। मुगल साम्राज्य का प्रभाव न तो इतना गहरा था और न इतना व्यापक जितना कि इसको माना जाता है। भारत का एक काफी बड़ा भाग विशेषकर उत्तर पूर्वी तथा दक्षिणी भाग इसके बाहर था और इसी भाँति बहुत से सामाजिक समूह भी इसके प्रभाव से बाहर रहे। इसलिये अखिल भारतीय स्तर पर होने वाले परिवर्तनों का विश्लेषण करने के लिये मुगल साम्राज्य के पतन को उचित आधार नहीं माना जा सकता। हाल ही में कुछ विद्वानों का मत है कि अखिल भारतीय साम्राज्यों के उत्थान तथा

पतन की तुलना में क्षेत्रीय राजनैतिक शक्तियों की स्थापना 18वीं सदी की ज्यादा महत्वपूर्ण विशेषता थी। मध्यकालीन भारत के अग्रणीय इतिहासकार प्रो. सतीश चन्द्र के अनुसार, 18वीं सदी के इतिहास को पूर्व-ब्रिटिश व ब्रिटिश दो भागों में देखने के स्थान पर उसे उसकी निरंतरता तथा समग्रता में देखा जाना चाहिए।

1.3 मुगल साम्राज्य का पतन

18वीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही मुगल साम्राज्य का पतन प्रकट होने लगा और 1740 में, जिस तिथि से हमारा अध्ययन शुरू होता है, नादिरशाह ने मुगलों की राजधानी दिल्ली नगर को तहस-नहस किया। 1761 में अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध मुगलों ने नहीं बल्कि मराठों ने युद्ध किया। 1883 से मुगल सम्राट ब्रिटिश शासकों का पेंशन प्राप्तकर्ता बन गया।

1.3.1 आंतरिक कमजोरियाँ: सत्ता के लिये संघर्ष

औरंगजेब की गलत नीतियों ने मुगलों की स्थायी राजनैतिक व्यवस्था को कमज़ोर किया। परन्तु मुगल साम्राज्य के दो मुख्य स्तम्भ सेना तथा प्रशासन 1707 ई. तक पूर्णत: सक्रिय थे। उत्तराधिकार के युद्धों तथा कमजोर शासकों के कारण 1707 से 1719 तक दिल्ली में अव्यवस्था फैल गई। मोहम्मद शाह का 1719 से 1748 तक का लम्बा शासन काल साम्राज्य के भाग्य को पुन: स्थापित करने के लिये पर्याप्त था परन्तु सम्राट की पूर्ण अयोग्यता ने इस संभावना को भी समाप्त कर दिया।

निज़ामुल-मुल्क ने इस सम्राट के शासन के दौरान वजीर के पद से त्यागपत्र देकर 1724 में हैदराबाद के स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। बंगाल, अवध और पंजाब ने भी इस पथ का अनुसरण किया और साम्राज्य का उत्तराधिकारी राज्यों में विभाजन हो गया। छोटे सरदारों ने इसे विद्रोह का सूचक समझा और मराठों ने अपने साम्राज्य की स्थापना की कल्पना को साकार करने के लिये पुरजोर प्रयासों को प्रारंभ कर दिया।

1.3.2 बाहय चुनौतियाँ

ईरान के सम्राट नादिरशाह ने 1738–39 में भारत पर आक्रमण किया। उसने शीघ्र ही लाहौर पर विजय प्राप्त कर ली तथा 13 फरवरी 1939 को करनाल में मुगल सेना को पराजित कर दिया। इस अपमानजनक पराजय को और पूरा करने के लिये मुगल सम्राट मोहम्मद शाह को पकड़ लिया गया तथा दिल्ली को लूटा गया। उस समय के कवियों मीर तथा शौदा ने दिल्ली के नष्ट होने संबंधी विलाप गीत का वर्णन अपनी रचनाओं में किया है। परन्तु नादिरशाह के आक्रमण का दिल्ली पर इतना व्यापक प्रभाव नहीं हुआ जितना कि सामान्यत: माना जाता है। अब्दाली के आक्रमण का दिल्ली पर अधिक भयंकर प्रभाव हुआ। परन्तु 1772 तक स्थिति पुन: सुधर चुकी थी।

शाही खजाने से 70 करोड़ रुपये तथा धनी कुलीनों की जमा राशियों को लूट लिया गया। उसकी लूट में सबसे बहुमूल्य वस्तुएँ मयूर सिंहासन तथा कोहिनूर हीरा थे। नादिरशाह ने मुगल साम्राज्य के सामरिक महत्व के काबुल सहित सिंधु नदी के पश्चिमी क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। एक बार फिर भारत उत्तर-पश्चिम से होने वाले आक्रमणों का शिकार हो गया। नादिरशाह के सेनापति के रूप में अहमद शाह अब्दाली अति महत्वपूर्ण हो गया तथा नादिरशाह की मृत्यु के पश्चात उसने अफगानिस्तान पर अपना शासन कायम कर लिया। 1748 से 1767 तक उसने कई बार भारत पर आक्रमण किये। उसने सबसे महत्वपूर्ण विजय मराठों के विरुद्ध 1761 में दर्ज की जिसको पानीपत के तीसरे युद्ध के नाम से जाना जाता है।

1.3.3 पतन: कुछ व्याख्यायें

मुगल साम्राज्य के पतन के संदर्भ में कई दशकों से हमारे परम्परागत दृष्टिकोण में सुधार आया है। परम्परागत विचार के प्रस्तुतकर्त्ता इर्विंग तथा जादुनाथ सरकार आदि इतिहासकारों के अनुसार सम्राटों तथा कुलीनों की व्यक्तिगत असफलतायें, उनके दुराचार एवं विलासिता में लिप्त रहना मुगल साम्राज्य के पतन के कारण थे।

सरकार एवं अन्य इतिहासकारों ने मुगल शासन का चित्रण एक मुस्लिम शासन के रूप में किया है तथा मराठों, सिक्खों व बुन्देला के विद्रोहों को इस्लामी दमन के विरुद्ध हिन्दू प्रतिक्रिया बताया है।

परन्तु इस विचार का उचित विरोध करते हुए, सतीश चन्द्र तथा इरफान हबीब ने मुगल साम्राज्य के पतन को आर्थिक व्यवस्था के संकट के रूप में चित्रित किया है। सतीश चन्द्र का तर्क है कि जागीरदारी व्यवस्था में संकट हो जाने के कारण मुगल साम्राज्य का पतन हुआ तथा ऐसा इसलिये हुआ कि जागीरदारों की बहुतायत थी परन्तु जागीरों की संख्या कम थी।

इरफान हबीब के अनुसार मुगलों के अन्तर्गत कृषि व्यवस्था और अधिक शोषणकारी हो गयी थी क्योंकि इन सीमित साधनों पर दबाव अधिक बढ़ने लगा था। इसी कारणवश किसान विद्रोह फूट पड़े जिसके कारण साम्राज्य का स्थायित्व नष्ट हो गया।

परन्तु भारत के नवीन कैम्ब्रिज इतिहास के लेखकों का मत इरफान हबीब से विपरीत है। उनका कहना है कि मुगल साम्राज्य के पतन का कारण मुगल व्यवस्था की सफलता में निहित था न कि इसकी असफलता में। उनका मत है कि जिन जमींदारों ने मुगलों के विरुद्ध विद्रोह किये जो मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बने वे जमींदार धनी थे न कि गरीब किसान और इनका समर्थन धनी व्यापारियों द्वारा भी किया गया। परन्तु इस मत को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि अन्य प्रमाण इस संदर्भ में नहीं मिल जाते। फिलहाल हमारे लिये आर्थिक व्यवस्था का संकट ही, मुगल साम्राज्य के पतन का स्वीकृत कारण प्रतीत होता है।

1.3.4 मुगल परम्पराओं की निरंतरता

मुगल साम्राज्य के तेजी से होते क्षेत्रीय विखण्डन के बिल्कुल विपरीत सरकार की मुगल परम्परा जीवित रही। 1761 के आते-आते मुगल साम्राज्य नाम मात्र को रह गया था। यह कहना उचित होगा कि यह केवल दिल्ली मात्र का राज्य था। परन्तु सम्राट की स्थिति का सम्मान इतना अधिक था कि चाहे कोई क्षेत्र प्राप्त करना हो या फिर सिंहासन या साम्राज्य, इन सबके लिये सम्राट की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। यहाँ तक कि मराठों तथा सिक्खों के विद्रोही सरदारों ने कभी-कभी सम्राट को प्रभुत्व का उद्गम या स्रोत माना। 1783 में सिक्खों ने मुगल बादशाह के दरबार में नजराना भेंट किया (इसके बावजूद कि उनके गुरुओं को मुगलों ने मरवाया था) तथा 1714 में मराठा नेता साहू औरंगजेब की समाधि के दर्शन के लिये आया।

अंग्रेजों और मराठों ने बादशाह को अधिकार में लेने के लिये इस आशा से संघर्ष किया कि वे साम्राज्य पर उत्तराधिकार के अपने दावों को वैधता प्रदान कर सकें। बक्सर के युद्ध के बाद बादशाह शाह आलम द्वितीय को कम्पनी ने अपना पेंशन-भोगी बना लिया परन्तु दिल्ली पर उसने मराठों के संरक्षण को प्राथमिकता दी। परन्तु 1803 में अंग्रेज़ों के द्वारा दिल्ली पर अधिकार कर लिये जाने के कारण मुगल बादशाह पुन: अंग्रेज़ों के संरक्षण में आ गया।

मुगल प्रशासन के तौर-तरीकों को क्षेत्रीय राजनैतिक शक्तियों ने भी अपना लिया। मुगल साम्राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों के लिये यह स्वाभाविक भी था कि उन्होंने मुगलों की पुरानी परम्पराओं को जारी रखा। यहाँ तक कि मराठा जैसे राज्यों ने भी, जहाँ पर साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध लोकप्रिय आंदोलनों का प्रारंभ हुआ था, प्रशासन के मुगल तरीकों का अनुसरण किया। जिन बहुत से अधिकारियों की शिक्षा मुगल परम्पराओं के अनुरूप हुई थी, उनको इन बहुत सी रियासतों में रोजगार मिल गया।

संस्थाओं की निरंतरता बनाम व्यवस्था संबंधी परिवर्तन

परन्तु संस्थाओं की निरंतरता से हमें इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचना चाहिये कि मुगल राजनैतिक व्यवस्था जीवित बनी रही। नवीन राजनैतिक व्यवस्थाओं का चरित्र क्षेत्रीय था और उनमें से कोई भी अखिल भारतीय स्तर का चरित्र ग्रहण न कर सकी। कुछ पुरानी संस्थाओं के साथ नवीन राजनैतिक व्यवस्थाओं को क्षेत्रीय शासकों और बाद में अंग्रेज़ शासकों के द्वारा पुन: एकयबद्ध कर दिया गया। औपनिवेशिक व्यवस्था के अंतर्गत पुरानी मुगलीय संस्थाओं ने भिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पन्न किया। भू-राजस्व व्यवस्था लगभग पहले ही के समान थी, परन्तु उपनिवेशवाद के अन्तर्गत एकत्रित की गई सम्पदा का निष्कासन भारत में हुआ। स्वरूप तथा

कार्य का यह अंतर साम्राज्यवादी इतिहास लेखन से पूर्णत: गायब है और संस्थाओं की निरंतरता पर उनके द्वारा बल देने का उद्देश्य मात्र यह साबित करना है कि ब्रिटिश शासक भी अपने परवर्तियों से भिन्न नहीं थे।

बोध प्रश्न 1

1) नादिरशाह के द्वारा प्राप्त की गई वित्तीय तथा क्षेत्रीय उपलब्धियाँ क्या थीं ? पाँच पंक्तियों में लिखिये।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित वाक्यों को पढ़कर उन पर सही (✓) तथा गलत (×) चिह्न लगाइये।

i) कुलीनों के बीच सत्ता के लिये संघर्ष मुगलों के लिये मुख्य आंतरिक कमजोरी थी। (   )

ii) मुगल सम्राट की व्यक्तिगत असफलता मुगल साम्राज्य के पतन के लिये मुख्य रूप से उत्तरदायी थी। (   )

iii) भारत का नवीन कैम्ब्रिज इतिहास लेखन आर्थिक संकट के तर्क को प्रस्तुत करता dl (   )

iv) मुगलों से ब्रिटिश व्यवस्था तक संस्थाओं की निरंतरता से सिद्ध होता है कि अंग्रेज़ शासक भारतीय शासकों से भिन्न नहीं थे। (   )

3) मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही क्या मुगल परम्परायें समाप्त हो गई थी ? 50 शब्दों में विवरण दीजिये।

....

....

....

....

....

1.4 क्षेत्रीय राजनैतिक व्यवस्थाओं का उदय

मुगल साम्राज्य के पतन के साथ-साथ क्षेत्रीय राजनैतिक व्यवस्थाओं का उदय 18वीं सदी की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता थी। इस समय साधारणत: तीन प्रकार के राज्यों का उदय हुआ:

- उत्तराधिकारी राज्य जो मुगल साम्राज्य से टूट कर अलग हो गये,
- नये राज्य जिनकी स्थापना मुगलों के विरुद्ध विद्रोहियों द्वारा की गयी, और
- स्वतन्त्र राज्य।

अब हम इनमें से प्रत्येक का विश्लेषण करेंगे।

1.4.1 उत्तराधिकारी राज्य

हैदराबाद, बंगाल तथा अवध ऐसे तीन राज्य थे जहाँ मुगलों के अधीन प्रांतीय गवर्नर थे तथा जिन्होंने स्वतंत्र राज्यों की स्थापना की थी। ये राज्य दिल्ली से कई चरणों में अलग हुए —कुछ व्यक्तियों का विद्रोह क्रमश: सामाजिक समूहों, समुदायों तथा अन्तत: क्षेत्रीय विद्रोहों में परिवर्तित हो गया। शाही करों की अधिक मांग के विरुद्ध जमींदारों के विद्रोहों ने

टूटने की इस प्रक्रिया को पूर्ण कर दिया। प्रांतीय गवर्नरों को केन्द्र से कोई सहायता प्राप्त नहीं हुई जिसके फलस्वरूप उन्होने स्थानीय प्रभावशाली गुटों का समर्थन प्राप्त करने के लिये प्रयास किये। फिर भी केन्द्र के साथ सम्पर्कों को बनाये रखा गया तथा मुगल परम्परायें भी जारी रहीं। जिस समय नादिर शाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया तो अवध तथा हैदराबाद ने मुगल शासकों की सहायता की। कुलीनों के विभिन्न गुटों के साथ अपने सम्पर्कों के कारण प्रांतीय गवर्नर केन्द्र को नियंत्रित करने के लिये काफी शक्तिशाली थे। इसलिये इस समय में राजनैतिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों को पतनशील बताने की अपेक्षा रूपांतरण की विशेषता के नाम से जानना उचित होगा (इस अवधारणा का प्रयोग मुजफ्फर आलम ने किया है)। मुगलों के संस्थात्मक ढांचे के अंतर्गत एक नवीन राजनैतिक व्यवस्था को निर्मित किया गया।

अखिल भारतीय स्तर पर राजनैतिक व्यवस्था के मृतप्राय हो जाने पर सामान्यत: आर्थिक ह्रास नहीं हुआ। क्षेत्रीय चित्र बहुत ही भिन्न था। विदेशी आक्रमण के कारण पंजाब की अर्थव्यवस्था में रुकावट आयी लेकिन अवध की अर्थव्यवस्था में वृद्धि हुई। लखनऊ की सुरक्षा के लिये अवध नवाब सफदर जंग ने इस अवसर पर नादिरशाह को तीन करोड़ रुपये दिये। अवध में आर्थिक संपन्नता के आधार पर राजनैतिक व्यवस्था में स्थायित्व कायम हुआ जबकि पंजाब में निर्मित राज्य धराशायी हो गये।

हैदराबाद

1748 में निजाम-उल-मुल्क की मृत्यु के साथ हैदराबाद के इतिहास का गौरवशाली प्रथम अध्याय भी समाप्त हो गया। इस राज्य की स्थापना 1724 में निजामुल-मुल्क ने उस समय की थी जिस समय दिल्ली दरबार पर सैयद बंधुओं का नियंत्रण था और वह एक प्रमुख कुलीन था। इसने सैयदों को हटाने में मोहम्मद शाह की सहायता की थी और इसके बदले में उसने दक्कन की सूबेदारी प्राप्त की।

उसने प्रशासन को पुनर्गठित किया तथा राजस्व व्यवस्था को सुचारू बनाया। 1722 से 1724 तक संक्षिप्त समय के लिये दिल्ली में वज़ीर रहने के बाद वह एक राज्य की स्थापना करने के लिये दक्कन को वापस लौट गया जो व्यवहारिक स्तर पर एक स्वतंत्र राज्य था, फिर भी उसने मुगल सम्राट के प्रति अपनी राज भक्ति की घोषणा को निरंतर बनाये रखा। क्षेत्रीय प्रमुत्व सम्पन्न वर्ग के बन जाने से इस स्वतंत्रता को स्थायित्व मिल गया जैसा कि इतिहासकार कैरेन लियोनार्ड ने हैदराबाद की राजनैतिक व्यवस्था के अपने अध्ययन में दिखाया है। राजस्व व्यवस्था में सुधार, जमींदारों को अधीन करना, हिन्दुओं के प्रति सहिष्णुता की नीति का अनुसरण आदि उसकी प्रशंसनीय नीतियाँ थीं।

परन्तु 1748 में उसकी मृत्यु हो जाने पर हैदराबाद की कमजोरियाँ, मराठों एवं विदेशी कम्पनियों के आघातों के सामने स्पष्ट हो गई। मराठा सेनायें अपनी इच्छानुसार राज्य पर आक्रमण करती और नि:सहाय राज्य के लोगों से चौथ वसूल करती। निजाम-उल-मुल्क पुत्र नासिर जंग और पौत्र मुजफ्फर ज़ंग के बीच उत्तराधिकार के लिये संघर्ष हुआ। डुप्ले के नेतृत्व में फ्रांसीसियों ने इस अवसर का प्रयोग एक गुट को दूसरे गुट के विरुद्ध लड़ाने में किया तथा अन्तत: मुजफ्फर जंग का समर्थन किया और उसने इसके बदले फ्रांसीसियों को काफी मोटी रकम एवं क्षेत्र उपहार के रूप में दिया।

बंगाल

व्यवहार में स्वतंत्रता तथा दिल्ली की राजसत्ता के प्रति राज भक्ति बंगाल के नवाबों के शासन की विशेषता थी। 1717 में मुगलों की सत्ता के अधीन मुर्शिद कुली खान बंगाल का गवर्नर बना परन्तु दिल्ली के साथ उसका सम्पर्क नजराना भेजने तक ही सीमित था। शुजाउद्दीन 1727 में नवाब बना तथा अलीवर्दी खान द्वारा 1739 में शासन संभालने तक वह इस पद पर बना रहा। 1756 में अपने दादा अलीवर्दी खान की मृत्यु के बाद सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब हुआ।

बंगाल के नवाबों ने, सार्वजनिक पदों के लिये नियुक्तियाँ करने में, धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया तथा हिन्दू भी सार्वजनिक सेवाओं में उच्चतर पदों तक पहुँचे और उन्होंने कई आकर्षक जमींदारियों को प्राप्त किया। नवाबों ने अपनी स्वतंत्रता को कठोरता के साथ बनाकर रखा तथा अपने प्रमुत्व वाले इलाकों में विदेशी कम्पनियों पर कड़ा नियंत्रण रखा।

फ्रांसीसी तथा अंग्रेज़ी कम्पनियों को चन्दरनगर तथा कलकत्ता में किलेबन्दी करने की इजाजत नहीं दी और न ही नवाब द्वारा उनको विशेष सुविधायें प्रदान की गई। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये बार-बार सैन्य शक्ति का प्रयोग करने की धमकियों के बावजूद बंगाल के नवाबों ने अपनी संप्रभुता को बनाये रखा।

परन्तु अंततः कम्पनी के हाथों नवाबों को पराजय का मुँह देखना पड़ा क्योंकि उनकी सेना कमजोर तथा दुर्बल थी और उन्होंने कम्पनी से उत्पन्न होने वाले खतरों को कम करके आंका। 1757 में प्लासी के युद्ध में अंग्रेज़ों की विजय ने भारत के साथ अंग्रेज़ों के संबंधों के नये युग का सूत्रपात किया।

अवध

सआदत खां बुरहानुल-मुल्क को 1722 में अवध w सूबेदार नियुक्त किया गया था परन्तु उसने इसके बाद अवध को एक स्वतंत्र राज्य बना दिया। अवध में मुख्य समस्या उन ज़मींदारों ने उत्पन्न की जिन्होंने न केवल भू-राजस्व देना बंद कर दिया बल्कि अपनी सेनाओं तथा किलों के द्वारा स्वतंत्र सरदारों की भांति कार्य करने लगे। सआदत खां ने उनको अपने अधीन किया तथा एक नयी भू-व्यवस्था को लागू किया जिसके द्वारा किसानों को ज़मींदारों के शोषण के विरुद्ध संरक्षण am? किया गया। जागीरदारी व्यवस्था को सुधारा गया तथा जागीरों को स्थानीय उच्च लोगों को प्रदान किया गया और उनको प्रशासन एवं सेना में भी उच्च स्थान मिले। एक "क्षेत्रीय शासक वर्ग" पैदा हो गया जिसके अंतर्गत शेखज़ादे, अफगान एवं कुछ हिन्दू भी थे। परन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि बुरहानुल-मुल्क और सफदर जंग दोनों बाहर से आये थे। बंगाल एवं हैदराबाद की भांति ही अवध के शासक भी अपने दृष्टिकोण में साम्प्रदायिक नहीं थे और हिन्दुओं ने भी उच्च पदों को प्राप्त किया था।

सआदत खां की मृत्यु के बाद 1739 में सफदर जंग अवध का नवाब बना तथा 1754 तक इस पद पर बना रहा। उसने पहले की नीति का सफलतापूर्वक अनुसरण करते हुए ज़मींदारों का कठोरता के साथ दमन किया। परन्तु पेशवा के साथ समझौता करने के अपने प्रयास में वह असफल रहा क्योंकि इसी के द्वारा मराठों और मुगलों को, अब्दाली के अधीन अफगान विदेशी आक्रमणकारियों और आंतरिक विद्रोहियों जैसे कि राजपूतों एवं बंगेश के पठानों के विरुद्ध संयुक्त रूप से सैनिक कार्यवाही करनी थी। परन्तु पेशवा ने अदूरदर्शिता का परिचय दिया क्योंकि दिल्ली में वह सफदर जंग के विरोधियों से जा मिला जिन्होंने उसे अवध और इलाहाबाद का सूबेदार बनाने का वचन दिया। लेकिन करार पूरा हो जाने पर सफदर जंग द्वारा पेशवा को 50 लाख रुपये तथा पंजाब सिंध और उत्तर भारत के कई जिलों का चौथ दिया जाने वाला था। इसके अलावा पेशवा को आगरा तथा अजमेर का सूबेदार बनाया जाना था।

1.4.2 नये राज्य

क्षेत्रीय राज्यों का दूसरा समूह "नये राज्यों" या "विद्रोही राज्यों" का था जिनकी स्थापना मराठों, सिक्खों, जाटों एवं अफगानों ने मुगलों के विरुद्ध विद्रोह करके की थी। पहले तीन राज्यों का प्रारंभ, किसान विप्लव के लोकप्रिय आंदोलनों के द्वारा हुआ। इन आंदोलनों का नेतृत्व कुलीनों के साथ न होकर अक्सर समाज के साधारण "नये आदमियों" अर्थात् हैदरअली, सिंधिया और होलकर सरीखे लोगों के पास था।

मराठा

यदि 18वीं सदी के इतिहास की दो मुख्य घटनायें मुगल शक्ति का पतन एवं औपनिवेशिक शासन की स्थापना थी तो तीसरी महत्वपूर्ण घटना क्षेत्रीय राज्यों का उदय एवं पतन था और इनमें सबसे महत्वपूर्ण मराठा राज्यों का उदय। इनमें से प्रथम का अखिल भारतीय साम्राज्य के रूप में पतन हुआ, दूसरे को अभी अपना स्थान ग्रहण करना था और तीसरा साम्राज्य अपने अस्तित्व में आने से पूर्व ही असफल हो गया। मुगल साम्राज्य का पतन सदी के पूर्वार्द्ध में हो गया, ब्रिटिश सत्ता का तेजी के साथ विकास सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ परन्तु सदी के बिल्कुल मध्य में अधिकतर भू-भाग मराठों के राजनैतिक शासन के अधीन हो गया।

मराठा राज्य व्यवस्था की मुख्य विशेषता पेशवाओं या प्रधानमंत्रियों का आधिपत्य था जिसका विकास बालाजी विश्वनाथ के शासन काल के दौरान हुआ। वह शिवाजी के पौत्र साहू का एक

वफादार अधिकारी था। 1707 में साहू को मुगलों की जेल से छोड़ दिया गया तथा वह मराठा राज्य का राजा बन गया। उसके शासन के दौरान पेशवा की शक्ति में तेजी के साथ वृद्धि हुई और मराठा सम्राट नाम मात्र का शासक रह गया।

1702 में बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हो गई और उसके बाद उसका पुत्र बाजीराव पेशवा बना जिसकी मृत्यु 1740 में हुई और इसी समय से हमारा अध्ययन भी प्रारंभ होता है। इस समय तक मराठा क्षेत्रीय शक्ति न रहकर एक विस्तारवादी साम्राज्य बन गया था। उन्होंने मुगल साम्राज्य के दूर दराज के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था। इसकी मुख्य दुर्बलता यह थी कि इन विजयों को प्राप्त करने में मराठा सरदारों की अग्रिम भूमिका थी और ये सरदार पेशवा द्वारा जारी किये गये नियमों को मानने के विरुद्ध थे। उन्होंने पेशवा के प्रभुत्व को इसलिये स्वीकार किया था कि उसके साथ रहने में उनको सैन्य तथा वित्तीय लाभ होता था। कुछ विशेष क्षेत्रों में चौथ तथा सरदेशमुखी को एकत्रित करने और विजित करने की आज्ञा मराठा सरदारों को प्रदान कर दी गई थी। अगर पेशवा उनकी गतिविधियों को नियंत्रित करने की कोशिश करता तो ये सरदार दूसरे विरोधी गुटों के साथ हो जाते। बालाजी विश्वनाथ के समय में यह स्थिति थी।

संभवत: इसी से सीख लेते हुए बाजीराव ने स्वयं सैनिक अभियानों का नेतृत्व किया और दूसरे क्षेत्रों के साथ-साथ गुजरात और मालवा के उपजाऊ क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। दुर्भाग्यवश यह दक्कन की शक्ति हैदराबाद के शासक निजामुल-मुल्क के साथ उलझ गया। दोनों ने पहले मुगलों के विरुद्ध गठबंधन किया और बाद में अंग्रेज़ों के, तथा दोनों को ही इससे लाभ हुआ। परन्तु उन्होंने एक दूसरे के विरुद्ध मुगल पदाधिकारियों के साथ गठबंधन भी बनाये।

बाजीराव की सेनाओं ने निजाम की सेनाओं को दो बार निर्णायक रूप से पराजित किया परन्तु दक्कन प्रांतों पर अधिकार करने के लिये दोनों के बीच संघर्ष जारी रहा। अंग्रेज़ भी इस संघर्ष में कूद पड़े और अब यह त्रिकोणीय संघर्ष में बदल गया जो अंग्रेज़ों के लिये बड़ा ही लाभकारी सिद्ध हुआ और उन्होंने उनका उपयोग एक दूसरे के विरुद्ध किया।

बालाजी राव, जिसको नानासाहेब के नाम से भी जाना जाता था, 1740 से 1761 तक पेशवा रहा। इसके शासन के दौरान मराठा शक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर थी। अब मराठा शक्ति का प्रसार केवल उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित नहीं था जिन पर मुगलों का अनिश्चित अधिकार था। भारत का कोई ऐसा भाग न था जिसने मराठों की विजय के साथ लूट को न देखा हो। दक्षिण भारत को अपने अधीन करना उनके लिये सरल रहा। 1760 में हैदराबाद की पराजय के बाद उसने अपने बहुत से क्षेत्रों को मराठों को चौथ एवं सरदेशमुखी वसूली के लिये छोड़ दिया। मैसूर तथा अन्य राज्यों ने उनको नजराना भेंट किया। पूरब में, बंगाल की लगातार विजयों से उनको 1751 में उड़ीसा प्राप्त हो गया। मध्य भारत में, बाजीराव ने मालवा, गुजरात तथा बुन्देलखंड के जिन क्षेत्रों को विजयी किया उनको शेष मराठा साम्राज्य के साथ भली भांति मिला लिया गया।

मुगलों, मराठों और अफगानों के बीच संघर्ष

प्रारंभिक सरल विजयों को प्राप्त करने के बाद मराठा शासकों के लिये उत्तरी भारत पर स्वामित्व बनाये रखना अधिक मुश्किल कार्य सिद्ध हुआ। दिल्ली पर स्थित मुगल शासक मराठों के प्रभाव में आ गये परन्तु अफगानों ने अब्दाली के नेतृत्व में मराठों को पीछे ढकेल दिया।

पानीपत का तृतीय युद्ध, 1761

पानीपत का तृतीय युद्ध 14 जनवरी 1761 को हुआ। परन्तु इस संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि इसने मराठों के उस प्रभाव को भी मृतप्राय: कर दिया जो उन्होंने 1752 में उत्तरी भारत को रौंद कर दिल्ली दरबार में तथा उत्तरी भारत पर स्थापित किया था। इमाद-उल-मुल्क को राज्य का वजीर घोषित किया गया परन्तु व्यवहारिक तौर पर सभी प्रकार से, मराठे ही शासक थे। मराठों ने इसी की प्राप्ति तक स्वयं को संतुष्ट न रखा तथा उन्होंने अपनी लालची आँखों से पंजाब की ओर देखा, जिस पर इस समय अब्दाली के एक सामन्त के द्वारा शासन किया जा रहा था। यही उनकी भयंकर भूल थी। अब्दाली भारत की लूट-खसोट करके वापस लौट गया

तथा कुछ क्षेत्रों का शासन प्रबंध करने के लिये अपने कुछ वफादार लोगों को छोड़ गया था, परन्तु मराठों की चुनौतियों का सामना करने के लिये उसने भारत वापस आने का निश्चय किया।

इस संघर्ष के बहुउद्देशीय परिणाम निकले क्योंकि इसमें उत्तरी भारत की छोटी-बड़ी कई ताकतों ने भाग लिया। मराठों की तुलना में अफगानों को एक लाभ था क्योंकि साम्राज्य के इस भाग को विजयी करने तथा इसका प्रशासन चलाने की प्रक्रिया में कई शक्तियाँ मराठों की शत्रु बन गई। इमाद-उन-मुल्क के अतिरिक्त मुगल कुलीनों को सत्ता संघर्ष में उन्होंने पराजित किया था। उनकी विजयों के कारण जाट और राजपूत शासक भी उनसे अलग-थलग पड़ गये थे और ऊपर से उनके ऊपर भारी जुर्माने थोपे गये। विदेशी आक्रमणों के कारण सिक्ख भी अपनी शक्ति को संगठित करने के प्रयासों से पहले ही निराश हो चुके थे। इसलिये पंजाब को अपने साम्राज्य में शामिल करने के मराठों के प्रयासों में सहायता करने के लिये कोई भी तैयार न था।

रुहेलखंड के सरदार तथा अवध के नवाब इस सीमा तक गये कि वे अब्दाली के साथ मिल गये क्योंकि मराठा सेनाओं ने उनके क्षेत्रों को भी रौंद डाला था। इन सबका परिणाम यह हुआ कि पानीपत के युद्ध में अब्दाली का सामना करने के लिये केवल मराठों की ही सेनायें थीं।

अफगान सेनाओं के साथ मराठा सेनाओं की कोई तुलना नहीं थी यद्यपि मराठा सेनाओं का प्रशिक्षण पश्चिमी आधार पर किया गया था। युद्ध के मैदान में 28000 सैनिकों के साथ-साथ सेनापति तथा पेशवा का छोटा बेटा विश्व राव और चचेरा भाई सदाशिव राव भाऊ मारे गये। इस दर्दनाक पराजय का समाचार सुनकर पेशवा, बालाजी बाजी राव अधिक समय तक जीवित न रह सका।

पानीपत के तृतीय युद्ध के बाद

भारत पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिये पानीपत का तृतीय युद्ध निर्णायक साबित हुआ। मुगलों को साम्राज्य शक्ति से हटाकर मराठों को स्थापित करने की उनकी अभिलाषा को इस पराजय के द्वारा एक विशेष सामरिक बिन्दु पर रोक दिया गया। अफगानों की अपेक्षा इससे अंग्रेज़ों को लाभ हुआ। बंगाल और भारत में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए इससे अंग्रेज़ों को व्यापक अवसर प्राप्त हुआ। एक बार भारत में पैर जमाने के बाद एक बार भी उन्हें पीछे मुड़कर न देखना पड़ा। 1761 की भारी पराजय के बाद एक बार फिर परन्तु क्षणिक समय के लिये ऐसा प्रतीत हुआ कि मराठों का भाग्य पुन: उदित हो गया। माधव राव ने जो 1761 में पेशवा बना, सफलतापूर्वक उत्तर के अपने पुराने शत्रुओं रुहेलों, राजपूतों तथा जाटों और दक्षिण में मैसूर व हैदराबाद को रौंद डाला। परन्तु पेशवा माधव राव की 1772 में 28 वर्ष की आयु में मृत्यु हो जाने के कारण मराठों का सपना निर्णायक रूप से समाप्त हो गया। अंग्रेज़ों के हाथों प्रथम ऐंग्लों-मराठा युद्ध (ऐंग्लों-मराठा संघर्ष इकाई 10 का शीर्षक है) में मराठों की पराजय ने शक्ति के लिये होने वाले मराठा गुटों के षड़यंत्रों एवं संघर्षों को भी स्पष्ट कर दिया।

मराठा राज्य एवं आंदोलन का चरित्र

मराठों का उदय मुगल केन्द्रीयकरण के विरुद्ध क्षेत्रीय प्रतिक्रिया के साथ-साथ निम्न वर्गों तथा छोटी जातियों का प्रगतिशील आंदोलन था। छोटे ग्रामीण जमींदारों तथा परम्परागत जुताईदारों (मीरासदार) ने इसका सामाजिक आधार बनाया। कृषक जातियाँ क्षेत्रीय जाति का स्तर प्राप्त करना चाहती थी और अधिकारीगण अपने हाथों में शक्ति को केन्द्रित करना। लूट को चौथ के रूप में संस्थागत कर दिया गया और यह मराठा राज्य व्यवस्था का एक वैध भाग बन गयी। मराठों के अर्ध विकसित निवास क्षेत्रों के लिये आमदनी बढ़ाने के लिये चौथ के रूप में धन गरीबों से वसूल किया गया। परन्तु लूट पर निर्भरता मराठा व्यवस्था की एक कमजोरी थी तथा, उन्होंने कर्नाटक, कोरोमण्डल एवं गंगा के मैदान के सम्पन्न क्षेत्रों पर उस समय भी सीधा शासन लागू नहीं किया जबकि ये उनके नियंत्रण में आ गये थे।

मराठों ने मुगल प्रशासनिक व्यवस्था के कुछ भाग को अपनाया। परन्तु उन्होंने अतिरिक्त उत्पादन को वसूल करने के लिये अपनी ही तकनीकियों पर ध्यान केन्द्रित किया जिनमें व्यापक प्रशासनिक ढाँचे का अभाव था। भलीभाँति परिभाषित प्रांतीय प्रभुत्व के अभाव में वे अपने प्रभाव को अफगानों तथा अंग्रेज़ों के आने से पूर्व आवश्यक गति के साथ सुसंगठित न कर सके और परिणामस्वरूप उनकी पराजय हुई।

उनकी प्रशासकीय व वित्तीय कमजोरियाँ विशेषकर सैन्य क्षेत्र में, उनके तकनीकी पिछड़ेपन में निहित थीं। उस समय की नवीन प्रगतियों को जैसे कि तोपखाना छोटे हथियार, विशेषकर कठोर बन्दूके और उन्नत अग्नि हथियारों को नहीं अपनाया गया।

सिक्ख

15वीं शताब्दी के अन्त में नये लोकतान्त्रिक धर्म सिक्खवाद का प्रसार सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पंजाब प्रांत में हुआ। आगामी दो सदियों तक यह व्यक्ति विशेष तक सीमित रहा, परन्तु दसवें गुरु गोविन्द सिंह के समय में, इस पंथ के अनुचरों में राजनैतिक अभिलाषाओं तथा संघर्षकारिता को पैदा करके इसको एक भली भाँति सुसंगित समुदाय में बदल दिया गया। औरंगजेब के विरुद्ध गुरु गोविन्द सिंह के संघर्ष को अच्छी प्रकार से जाना जाता है तथा इसी प्रकार से औरंगजेब के उत्तराधिकारियों के विरुद्ध बंदा बहादुर का विद्रोह था।

पंजाब के सामरिक रूप से महत्वपूर्ण होने के कारण, मुगलों ने पूरी ताकत के साथ विद्रोह को दबा दिया। अन्य विद्रोहियों की तुलना में सिक्ख विद्रोही मुगलों के साथ समझौता करने के इच्छुक नहीं थे। उन्होंने केन्द्र के साथ किसी भी प्रकार संबंध रखने से इंकार कर दिया और पूर्ण स्वतंत्र शासक बनने के लिये अपना संघर्ष जारी रखा। सिक्खों के संगठन में कुछ आंतरिक कमजोरियाँ थी। आंदोलन के नेता खत्रियों की स्थिति में गिरावट आयी क्योंकि विदेशी आक्रमणों तथा मराठों के कारण व्यापार तथा शहरी केन्द्रों का पतन हो गया। प्रगति की संभावनाओं के कारण आंदोलन में छोटी जातियाँ सम्मिलित हो गई और जिसके फलस्वरूप उच्च जातियों व वर्गों का विरोध इस आंदोलन के अंदर होने लगा।

1715 में बंदा बहादुर के विद्रोह का दमन हो जाने के बाद, लगभग एक चौथाई शताब्दी तक सिक्ख शांत रहे। परन्तु मुगल साम्राज्य के बुरे दिन सिक्खों के लिये अवसर के रूप में लाभकारी हुए। नादिरशाह और अब्दाली के आक्रमण उत्तरी भारत के लिये विनाशकारी साबित हुए और जो उनके लूटने से बच गया उसको सिक्खों ने लूट लिया। अब्दाली तथा उसके समर्थकों के वापस लौट जाने के बाद इस अपार सम्पदा के आधार पर तथा मुगलों का नियंत्रण समाप्त हो जाने की स्थिति का लाभ उठाते हुए सिक्खों ने तीव्रता के साथ पंजाब में अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया।

इसके उपरान्त 12 मिसलों या संघों ने मिलकर पंजाब प्रांत का गठन किया। हाल के वर्षों में इतिहासकारों ने इस विचार का खंडन किया है कि सिक्ख राज्य एक धार्मिक राज्य था। उनका कहना है कि यह भी उस समय देश के अन्य भागों की तरह एक धर्म निरपेक्ष राज्य था। लेकिन एक महत्वपूर्ण राज्य के रूप में पंजाब का उदय होना अभी बाकी था। यह कार्य शताब्दी के अन्त में रणजीत सिंह द्वारा पूरा किया गया।

जाट

जाट एक खेतिहर जाति थे जो दिल्ली-आगरा क्षेत्र में बसे थे। 17वीं सदी के उत्तरार्द्ध में मुगल आधिपत्य के विरुद्ध जाट किसानों के विद्रोहों के कारण मुगलसाम्राज्य के इस अन्तर्भागीय क्षेत्र की स्थिरता के लिये खतरा पैदा हो गया। मुगल शक्ति के पतन के साथ-साथ जाट शक्ति में वृद्धि हुई और एक किसान विद्रोह को विप्लव में परिवर्तित कर दिया गया जो इस क्षेत्र के अन्य गुटों सहित राजपूत जमींदारों के लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ। किसान विद्रोह होने के बावजूद भी जाट राज्य का ढांचा सामंती बना रहा जिसके अंतर्गत प्रशासनिक तथा राजस्व शक्तियाँ जमींदारों के पास थी और सूरजमल के शासन में भू-राजस्व मुगलों से कहीं अधिक था।

चूड़ामन तथा बदन सिंह ने भरतपुर में जाट राज्य की स्थापना की। परन्तु यह सूरजमल ही था जिसने जाट शक्ति को 1756 से 1763 तक अपने शासन काल में सुगठित एवं सुदृढ़ किया। राज्य के प्रसार के कारण इसकी सीमायें पूरब में गंगा नदी, दक्षिण में चम्बल उत्तर में दिल्ली तथा पश्चिम में आगरा तक फैल गयी। इसी के साथ-साथ उसमें विशेषकर राजस्व एवं नागरिक मामलों में विशेष प्रशासनिक योग्यता थी। परन्तु उसका शासन काफी कम समय तक रहा और 1763 में उसकी मृत्यु के बाद जाट राज्य का पतन हो गया।

फरुखाबाद और रुहेलखण्ड

रुहेलखण्ड तथा बंगश पठानों के राज्यों की स्थापना 17वीं सदी में अफगानों के विस्थापन का परिणाम थी। अफगानिस्तान में 18वीं सदी के मध्य में राजनैतिक तथा आर्थिक अस्थिरता पैदा

हो जाने के कारण काफी बड़ी संख्या में अफगानों का भारत में विस्थापन हुआ। नादिरशाह के आक्रमण के बाद उत्तर भारत में अराजकता की स्थिति पैदा हो गई। इसका लाभ उठाते हुए मुहम्मद खां ने रूहेलखण्ड के एक छोटे राज्य की स्थापना की। यह क्षेत्र हिमालय की तलहटी में उत्तर में कुमायूं पहाड़ियों तथा दक्षिण में गंगा नदी के बीच स्थित था। रूहेलों को जिनके उनके क्षेत्र रूहेलखण्ड के नाम से जाना जाता था, क्षेत्र की अन्य शक्तियों जैसे कि जाटों और अवध के शासकों तथा बाद में मराठों एवं अंग्रेज़ों के हाथों भारी पराजय को देखना पड़ा। दिल्ली से पूरब की ओर फरूखाबाद में मोहम्मद खान बंगश ने जो एक अफगान सरदार था, एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की।

अफगानियों के तोपखाने ने विशेषकर कठोर मूठ वाली बन्दूकों ने युद्ध में घुड़ सेना के आधिपत्य को समाप्त कर दिया।

राजनैतिक रूप से अफगानों की भूमिका नकारात्मक थी। न केवल उन्होंने मुगल साम्राज्य के पतन की गति को तीव्र किया बल्कि उन्होंने अवध के नवाब को परास्त करने के लिये अब्दाली की मदद की जो भारत में अंग्रेज़ों के प्रसार को रोक सकता था।

1.4.3 स्वतंत्र राज्य

तीसरी श्रेणी में वे राज्य आते थे जो न तो ब्रिटिश साम्राज्य से अलग हुए थे और न ही इन राज्यों का निर्माण दिल्ली के विरुद्ध विद्रोह करके किया गया था। मैसूर, राजपूत राज्य एवं केरल इस श्रेणी के राज्य थे।

मैसूर

18वीं सदी के मध्य में मैसूर का दक्षिण भारत में एक महत्वपूर्ण राज्य के रूप में उदय हुआ। मैसूर शक्ति की आधारशिला हैदरअली के द्वारा रखी गयी जिसको सुसंगठित उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने किया। हैदरअली यद्यपि मैसूर राज्य की सेना में एक छोटा अधिकारी था परन्तु उसने एक सेनापति के पद तक प्रगति की। हैदरअली की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह एहसास कराना था कि एक आधुनिक सेना ही शक्तिशाली राज्य का आधार हो सकती है। फलस्वरूप उसने सेना को पश्चिमी तरीकों से प्रशिक्षित किया एवं शस्त्र भंडारण करने के लिये फ्रांसीसी विशेषज्ञों को भर्ती किया। शीघ्र ही वह इतना शक्तिशाली हो गया कि उसने मैसूर सिंहासन के पीछे वास्तविक शक्ति मंत्री नुंजराज को 1761 में उखाड़ दिया।

मैसूर राज्य की सीमाओं में मालाबार तथा कर्नाटक के सम्पन्न तटीय क्षेत्रों को सम्मिलित कर लिया गया। बिल्कुल मध्य में प्रसार होने के कारण क्षेत्र की दूसरी शक्तियों मराठों, हैदराबाद तथा नवीन उभरती शक्ति अंग्रेज़ों के साथ उसका संघर्ष होना स्वाभाविक था। उसने 1769 में मद्रास के निकट अंग्रेज़ी सेनाओं के विरुद्ध अपनी विजय को दर्ज किया। 1782 में उसकी मृत्यु के बाद उसका बेटा टीपू सुल्तान मैसूर का सुल्तान बना और उसने भी अपने पिता द्वारा शुरू की गयी नीतियों का अनुसरण किया। टीपू सुल्तान का शासन इस इकाई के क्षेत्र से बाहर है।

राजपूत राज्य

मुगल साम्राज्य के बिखराव से राजपूत राजाओं ने लाभ उठाते हुए अपनी स्थिति को अन्य शासकों की भांति और मजबूत किया। उनमें से कोई भी इतना बड़ा एवं पर्याप्त शक्तिशाली नहीं था कि सर्वोच्च शक्ति की स्थिति को प्राप्त करने के लिये मराठों एवं अंग्रेज़ों को चुनौती दे सके। उनकी नीति थी कि दिल्ली के साथ अपने संबंधों को धीरे-धीरे समाप्त होने देना और स्वतंत्र राज्यों के रूप में कार्य करना। दिल्ली दरबार में सत्ता के लिये होने वाले संघर्षों एवं षडयंत्रों में उन्होंने भाग लिया और मुगल शासकों से आकर्षक तथा प्रभावशाली सूबेदारियाँ प्राप्त कीं। उत्तर मुगल काल में भी राजपूत नीति विखण्डित रूप में जारी रही। सभी राज्यों ने प्रसारवादी नीति का लगातार अनुसरण किया और जब भी संभव होता तो वे अपने कमजोर पड़ौसी को अपने राज्य में मिला लेते। ये खेल राज्य के अंदर भी खेला जाता, एक गुट दूसरे गुट के विरुद्ध उसी प्रकार से षडयंत्र रचता रहता था जैसा कि मुगलों के दिल्ली दरबार में खेल चलता रहता था। राजपूत शासकों में अजमेर का राजा जय सिंह बहुत लोकप्रिय हुआ और जिसने 1699 से 1743 तक जयपुर पर शासन किया।

केरल

वर्तमान केरल राज्य का गठन तीन राज्यों को चीन, त्रावणकोर तथा कालीकट को मिलाकर किया गया है। बहुत से सरदारों तथा राजाओं के क्षेत्र 1763 तक इन राज्यों के अंतर्गत थे। परन्तु मैसूर राज्य का प्रसार केरल की स्थिरता के लिये विनाशकारी साबित हुआ। हैदरअली ने 1766 में केरल पर आक्रमण किया और मालाबार तथा कालीकट पर अधिकार कर लिया।

त्रावणकोर धुर दक्षिण का एक महत्त्वपूर्ण एवं सुरक्षित राज्य था। 1729 के बाद इसका महत्त्व उस समय और भी बढ़ गया जबकि इसके राजा मार्तन्ड वर्मा ने मजबूत तथा पश्चिमी तरीकों से प्रशिक्षित और आधुनिक हथियारों से लैस आधुनिक सेना की मदद से अपने राज्य की सीमाओं का प्रसार किया। डचों को केरल से बाहर तथा सामंत सरदारों का दमन कर दिया गया। उसकी दृष्टि प्रसार के आगे अपने राज्य के विकास की ओर थी तथा उसने सिंचाई परिवहन और सम्पर्क साधनों को विकसित करने के लिये कार्य किया। उसका उत्तराधिकारी राम वर्मा एक महान् रचनाकार एवं विद्वान था तथा उसे पश्चिम का ज्ञान भी था। उसके शासन काल के दौरान उसकी राजधानी त्रिवेन्द्रम विद्वता तथा कला का केन्द्र बन गई।

1.4.4 क्षेत्रीय राजनीति की कमजोरियाँ

ये राज्य मुगल सत्ता को नष्ट करने के लिये पर्याप्त शक्तिशाली साबित हुए परन्तु इनमें से कोई भी मुगल साम्राज्य के स्थान पर अखिल भारतीय स्तर पर एक स्थिर, राजनैतिक व्यवस्था देने में सक्षम न हो सका। एक मत के अनुसार, ऐसा इसलिये था कि इन क्षेत्रीय राजनैतिक व्यवस्थाओं में ही कमजोरियाँ निहित थीं। यद्यपि इनमें से कुछ ने विशेषकर मैसूर ने आधुनिकीकरण की ओर प्रयास किया परन्तु कुल मिलाकर वे तकनीकी एवं विज्ञान में पिछड़ी हुई थी। ये राज्य आर्थिक गतिरोध की उस प्रक्रिया को न बदल सके जिसने मुगल साम्राज्य की अर्थव्यवस्था को चौपट कर दिया था। जागीरदारी संकट और गहरा हो गया क्योंकि कृषि से होने वाली आमदनी में गिरावट आयी और अतिरिक्त पैदावार पर हक जमाने वालों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। आंतरिक तथा विदेशी व्यापार बिना किसी रुकावट के जारी रहा और यहाँ तक कि उसमें सम्पन्नता बढ़ी परन्तु बाकी अर्थव्यवस्था में वृद्धि बंद हो गयी।

कमजोरियों के विषय में उपरोक्त विश्लेषण पर अभी हाल के वर्षों में इतिहासकारों द्वारा प्रश्नचिह्न लगाया गया है। कुछ विशेष उदाहरण स्थिति का दूसरा ही चित्र प्रस्तुत करते हैं। सतीश चन्द्र का कहना है कि आर्थिक ह्रास तथा सामाजिक अवरोध का एकरूप चित्रण करना गलत है। साम्राज्य की राजनैतिक व्यवस्था के मृत प्राय: होने के बावजूद साम्राज्य के पूर्वी भाग में आर्थिक विकास की गति में और तेजी आयी। औपनिवेशिक शासन की प्रारंभिक लूट-पाट को बंगाल प्रांत ने मजबूती से वहन किया। 1770 के बाद भी बंगाल की अर्थव्यवस्था में स्थायित्व बना रहा और रुई की वस्तुओं का निर्यात 1750 में 400,000 से 1790 में ढाई गुना तक बढ़ गया।

सामाजिक ढांचे में ठहराव नहीं आया, इसमें भी परिवर्तन हुए और छोटी जातियों ने प्रगति की तथा "नये लोग" आगे बढ़ते रहे। सारे भारत में ये सामान्य बातें थी।

मुजफ्फर आलम ने क्षेत्रीय आधार पर भिन्न-भिन्न विवरण प्रस्तुत किये हैं। उनका कहना है कि अवध में जहाँ एक ओर आर्थिक सम्पन्नता बढ़ी तो वहीं दूसरे क्षेत्रों (पंजाब) की अर्थव्यवस्था में ठहराव आया। परन्तु राजनैतिक व्यवस्थायें क्षेत्रीय बनी रही क्योंकि पर्याप्त अतिरिक्त धन के अभाव में अखिल भारतीय स्तर पर एक ऐसी स्वदेशी राज्य व्यवस्था कायम न हो सकी। जिसकी तुलना मुगल साम्राज्य के साथ की जा सकती थी।

बोध प्रश्न 2

1) किन-किन चरणों में मुगल प्रांत केन्द्र से अलग हुए ?

....

....

....

....

....

2) उन क्षेत्रों की सूची बनाइये जो मराठों ने 1740 से 1761 तक प्राप्त किये।

....

....

....

....

....

3) मुगलों के विरुद्ध विद्रोहियों ने किन-किन मुख्य राज्यों की स्थापना की ?

....

....

....

4) क्षेत्रीय राजनैतिक व्यवस्थाओं की कमजोरियों पर 10 पंक्तियाँ लिखिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.5 ब्रिटिश शक्ति का उदय

तृतीय तथा 18वीं सदी की राजनीति की सबसे निर्णायक तथा दूरगामी विशेषता भारत में ब्रिटिश शक्ति का उदय एवं प्रसार था। इसने भारत के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात किया। इस भाग में आप यह भली-भाँति जान जायेंगे कि भारत में अंग्रेज़ कैसे आये और फिर उन्होंने किस प्रकार से अपने प्रभाव का प्रसार किया।

1.5.1 व्यापारिक कम्पनी से राजनैतिक शक्ति तक

18वीं सदी के मध्य में अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक व्यापारिक कम्पनी से राजनैतिक शक्ति के रूप में परिवर्तन हो गया। अपनी स्थापना के दिन 31 दिसंबर 1600 ई. से 1744 तक, अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में अपने व्यापार एवं प्रभाव को धीरे-धीरे फैलाया। युद्ध तथा मुगल दरबार में घुसपैठ की संयुक्त नीति के द्वारा पुर्तगालियों और डचों के बढ़ते प्रभाव को रोक दिया गया। 18वीं सदी के आते-आते केवल फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी, भारत में अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कम्पनी की प्रमुख विरोधी विदेशी शक्ति के रूप में रह गयी थी जिसने इस संघर्ष में देर से पदार्पण किया था।

ब्रिटिश साम्राज्य के प्रारंभ को सामान्यत: 1757 के उस समय से माना जाता है जबकि अंग्रेज़ों ने प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब को पराजित किया। 1757 की विजय की पृष्ठभूमि दक्षिण भारत में उस समय तैयार की गयी जबकि अंग्रेज़ों ने फ्रांसीसी कम्पनी के साथ संघर्ष में अपनी

सैनिक शक्ति एवं कूटनीति का सफलतापूर्वक परीक्षण किया। इस संघर्ष को कर्नाटक युद्धों के नाम से जाना जाता है जो एक चौथाई शताब्दी 1744 से 1763 तक होते रहे। इकाई 9 में इनका विस्तृत रूप से विवरण किया जायेगा।

अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कम्पनी 150 वर्षों तक एक व्यापारिक संगठन बनी रही। इस समय में इसकी राजनैतिक अभिलाषाओं में वृद्धि का क्या कारण था ? जैसा कि हम खंड 2 में देखेंगे कि 1730 से भारत में यूरोपीय कम्पनियों के प्रसार का कारण, यूरोप के उत्पादन तथा व्यापार का फैलाव और यूरोप में आक्रामक राष्ट्रीय राज्यों का उदय होना था। भारत में मुगल प्रभुत्व के पतन ने स्पष्टत: इन कम्पनियों के प्रभाव के प्रसार के लिये महान् अवसर प्रदान किया।

करों से अधिक राजस्व प्राप्त करने की कम्पनी की लालसा ने उसे साम्राज्य स्थापित करने की ओर प्रेरित किया। कम्पनी को अपने व्यापार को बनाये रखने तथा सेनाओं के वेतन देने के लिये अधिक धन की आवश्यकता थी और उसे अपनी इस जरूरत को पूरा करने के लिये कुछ क्षेत्रों को प्राप्त करने का रास्ता सर्वश्रेष्ठ लगा। कम्पनी की बंगाल विजय में दोहरे स्वार्थों की पूर्ति हुई। एक तरफ तो उसने अपने व्यापार को संरक्षण प्रदान किया तो दूसरी ओर बंगाल के राजस्व पर अपना नियंत्रण कर लिया। उनका लक्ष्य था बंगाल के अतिरिक्त राजस्व को प्राप्त कर उसको बंगाल के सामानों पर खर्च करना। बंगाल से प्राप्त होने वाले सामानों के दाम 1765 में 400,000 पौंड से बढ़कर 1770 के दशक के अन्त तक 10 लाख पौंड तक पहुँच गये।

1.5.2 दक्षिण भारत में आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष

निजामुल-मुल्क के अधीन हैदराबाद राज्य, केन्द्रीय प्रभुत्व से स्वतंत्र हो गया था परन्तु 1748 में उसकी मृत्यु के बाद इस राज्य में अस्थिरता की शुरुआत हुई। जैसा कि कर्नाटक के संघर्षों से स्पष्ट है कि उत्तराधिकार के संघर्षों ने विदेशी कम्पनियों को हस्तक्षेप का अवसर प्रदान किया।

प्रथम कर्नाटक युद्ध

1742 में यूरोप के अन्दर दोनों देशों में युद्ध हो जाने के कारण प्रथम कर्नाटक युद्ध हुआ। 1745 के आते-आते यह युद्ध भारत में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी तथा फ्रांसीसी ईस्ट कम्पनी के बीच का युद्ध बन गया। ये दोनों कम्पनियाँ भारत में व्यापार एवं राजनैतिक प्रभाव में एक दूसरे की प्रतिद्वन्दी थीं। पांडिचेरी के पास अंग्रेज़ी सेना ने फ्रांसीसी जहाजों पर आक्रमण कर दिया परन्तु फ्रांसीसियों ने शीघ्र ही मद्रास पर अधिकार कर लिया। इस मौके पर कर्नाटक के नवाब ने अंग्रेज़ों द्वारा मद्रास को बचाने की अपील का उत्तर देते हुए फ्रांसीसी सेनाओं पर आक्रमण कर दिया। परन्तु उसकी सेनाओं को फ्रांसीसियों की एक छोटी सी सेना ने मद्रास के पास सेंट थोमस में पराजित कर दिया। यूरोप में युद्ध समाप्त होने के साथ ही अस्थायी रूप से दोनों कम्पनियों के बीच युद्ध समाप्त हो गया। सर्वोच्चता के प्रश्न का अभी अंतिम रूप से समाधान नहीं हुआ था। अत: 1748 के बाद संघर्ष की संभावनाएँ फिर से शुरू हो गयीं।

कर्नाटक का दूसरा युद्ध

कर्नाटक का दूसरा युद्ध पांडिचेरी के फ्रांसीसी गवर्नर डुप्ले के कूटनीतिक प्रयासों का परिणाम था। हैदराबाद तथा कर्नाटक राज्यों के सिंहासन प्राप्त करने के लिये आंतरिक कलह काफी गंभीर स्थिति ग्रहण कर चुके थे। इन राज्यों से आकर्षक भेंट प्राप्त करने की लालसा से डुप्ले ने शीघ्रता के साथ कर्नाटक में चन्दा साहिब और हैदराबाद में मुजफ्फर जंग को समर्थन देने का निश्चय किया। ये प्रारंभिक तैयारियां उस समय काफी उपयोगी सिद्ध हुई जबकि फ्रांसीसियों और उनके सहयोगियों ने 1749 में अपने विरोधियों को पराजित कर दिया। फ्रांसीसियों को क्षेत्रीय व आर्थिक दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त हुए। उन्होंने नॉर्दर्न सरकार, मच्छलीपत्तम और पांडिचेरी के आस-पास के कुछ गांवों को प्राप्त किया। राजनैतिक प्रभाव को बनाये रखने के लिये हैदराबाद के निजाम दरबार में फ्रांसीसियों के एक प्रतिनिधि की नियुक्ति कर दी गई।

अंग्रेज़ों ने अपनी पराजय का बदला 1750 में लिया। राबर्ट क्लाइव ने अपनी चालाकी पूर्ण योजना को लागू करते हुए 200 अंग्रेज़ सिपाहियों तथा 300 भारतीय सैनिकों की मदद से

आर्काट पर अधिकार कर लिया। चंदा साहिब के पास अब कोई रास्ता न था और अपनी राजधानी की सुरक्षा के लिये उसने त्रिचनापल्ली के घेरे को तोड़ा और इसके परिणामस्वरूप मुहम्मद अली को छुड़ा लिया। यह क्लाइव की आशाओं के अनुरूप था।

फ्रांसीसी सरकार के समर्थन के अभाव में फ्रांसीसियों के पुन: खोयी शक्ति को प्राप्त करने के प्रयासों को धक्का लगा। उनको अमेरिका तथा भारत के संघर्षों में भारी नुकसान को उठाना पड़ा और इसलिये उन्होंने खर्चीले संघर्षों के बदले अपमानजनक शांति को स्वीकार किया। इस प्रकार कम्पनी के चरित्र को एक राज्य के रूप में परिवर्तित करने का प्रयास फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिये बड़ा विनाशकारी सिद्ध हुआ। फ्रांसीसी सरकार न केवल भ्रष्ट एवं पतनशील थी बल्कि भविष्य में होने वाले विकासों तथा योजनाओं को समझने में भी असफल रही। अंग्रेज़ी कम्पनी के साथ वार्तालाप होने के बाद 1754 में डुप्ले को फ्रांस वापस बुला लिया गया और वास्तविक रूप में फ्रांसीसी चुनौती समाप्त हो गई।

कर्नाटक का तीसरा युद्ध

यूरोप में लड़ाई छिड़ जाने के कारण दोनों कम्पनियों के बीच पुन: 1756 में युद्ध शुरू हो गया। काउन्ट डी लाली के नेतृत्व में, फ्रांसीसी सेना की सहायता के लिये, फ्रांस ने एक सेना भारत को भेजी, परन्तु उसके जहाज को वापस भेज दिया गया तथा फ्रांसीसी सेना को कर्नाटक में पराजित कर दिया गया। हैदराबाद के दरबार, तथा क्षेत्र में फ्रांसीसियों को जो स्थिति प्राप्त थी उसको अंग्रेज़ों ने उनके स्थान पर ग्रहण कर लिया। 1760 में वाण्डी वाश के युद्ध में फ्रांसीसियों की पराजय से भारत में उनका प्रभाव समाप्त हो गया।

युद्ध जैसी शांति की परिस्थिति एक बार फिर यूरोप से ही संबंधित थी। पैरिस की 1763 की संधि के द्वारा फ्रांसीसी कम्पनी बिना किसी राजनैतिक अधिकार एक व्यापारिक संगठन मात्र रह गयी। अंग्रेज़ी और फ्रांसीसी कम्पनियों के बीच संघर्ष अंग्रेज़ों के लिये भारत में अपनी शक्ति को संगठित करने के लिये एक निर्णायक पड़ाव था। 20 वर्षों के बाद अंग्रेज़ों ने फ्रांसीसियों के ऊपर अपनी श्रेष्ठता को साबित कर दिया था। कर्नाटक के इन युद्धों से जो अनुभव उन्होंने सीखे उनको देश के अन्य भागों में भी लागू करके देखा गया।

1.5.3 बंगाल की विजय: प्लासी से बक्सर तक

बंगाल पहला ऐसा प्रदेश था जिस पर अंग्रेज़ों ने अपने राजनैतिक नियंत्रण को स्थापित किया। नवाब सिराजुद्दौला को 1757 में प्लासी की लड़ाई में पराजित कर दिया गया। 1757 में मीर कासिम के द्वारा 24 परगनों की जमींदारी तथा फिर 1760 में बुर्दवान, मिदनापुर, और चटगांव की जमींदारियां कम्पनी को प्रदान कर दी गयी। इससे कम्पनी के अधिकारियों को नवाब के अधिकारियों तथा किसानों का दमन करने का अवसर मिल गया। इसी प्रकार व्यापारिक अधिकारों का भी दुरुपयोग कम्पनी ने किया। मीर कासिम ने सिराजुद्दौला के उदाहरण का अनुसरण करते हुए अपनी सार्वभौमिकता पर होने वाले हमलों को मानने से इंकार कर दिया। उसने अवध के नवाब तथा मुगल सम्राट के साथ मिलकर 1764 में बक्सर में अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध किया। कम्पनी ने एक आसान सी विजय प्राप्त की। इकाई 8 में प्लासी से बक्सर तक होने वाली घटनाओं का विस्तृत रूप से वर्णन किया जायेगा। यहां पर हमारा संबंध केवल राजनैतिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों से है।

दोहरी शासन प्रणाली

1765 की संधि के द्वारा बंगाल में दोहरी शासन प्रणाली को लागू किया गया। क्लाइव बंगाल का गवर्नर हो गया तथा कम्पनी वास्तविक शासक। नवाब अब नाम मात्र का शासक रह गया और उसकी सेना को समाप्त कर दिया गया। प्रशासन का कार्य एक उप-सूबेदार को सौंप दिया गया जिसे नवाब के नाम पर कार्य करना था परन्तु उसको मनोनीत कम्पनी के द्वारा किया जाना था। उप-दीवान के माध्यम से राजस्व को एकत्रित करने पर कम्पनी का प्रत्यक्ष नियंत्रण कायम हो गया। दीवानी और सूबेदार के कार्यालयों पर एक ही व्यक्ति का नियंत्रण होने के कारण कम्पनी का नियंत्रण संपूर्ण था।

इससे भी अधिक इसमें लाभ यह था कि उत्तरदायित्व नवाब का था। कम्पनी के कारिन्दे जो लूट तथा दमन करते उसका आरोप नवाब पर लगाया जाता। यह अनुमान है कि 1766 से

1768 तक के वर्षों में कम्पनी ने केवल बंगाल से ही 57 लाख रुपये वसूल किये। क्लाइव सहित अंग्रेज उच्च अधिकारियों ने यह स्वीकार किया कि कम्पनी का शासन अन्यायपूर्ण तथा भ्रष्ट था और परिणामस्वरूप बंगाल की जनता को भयंकर रूप से दरिद्र किया गया।

1.5.4 राजनैतिक व्यवस्था का पुनर्गठन

अत्यधिक प्रशासनिक गलतियों के फलस्वरूप कम्पनी ने 1772 में दोहरी शासन प्रणाली को समाप्त कर दिया। कम्पनी मूलत: एक व्यापारिक संगठन थी, राज्य का प्रशासन करने के लिये उसके पास प्रशासनिक ढाँचा नहीं था। राजनैतिक शक्ति को सुव्यवस्थित करने के लिये इसके संविधान में परिवर्तन अपरिहार्य थे। कम्पनी के कार्य संचालन के लिये ब्रिटिश सरकार नियम बनाती थी। इसी कारणवश 1773 के रेगुलेटिंग एक्ट ने इसके कार्य को प्रभावित किया। इकाई 23 में इस एक्ट का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।
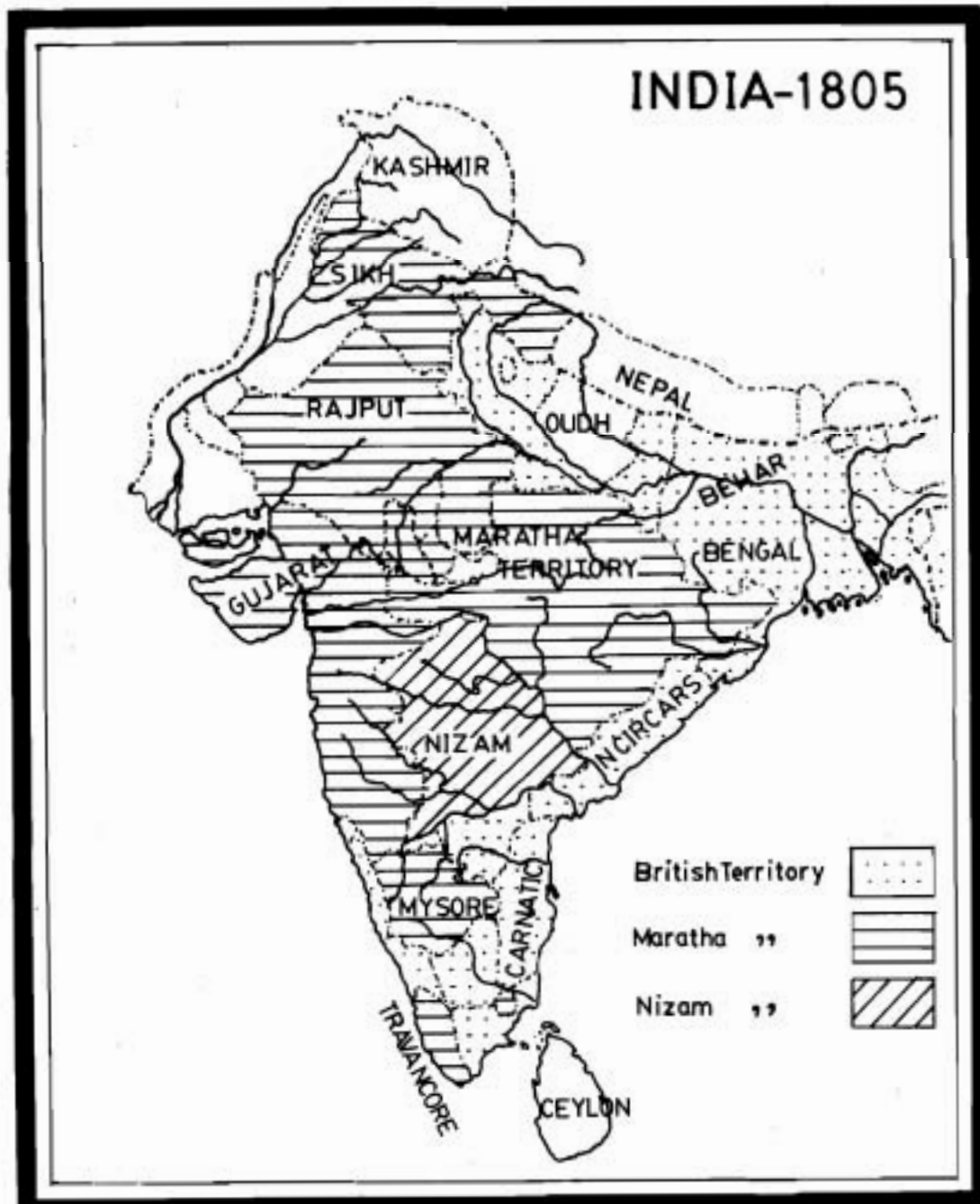
मानचित्र-1

पश्चिमी संस्थाओं को लागू करना

हमारे लिये रेगुलेटिंग एक्ट का महत्व इस बात में निहित है कि भारत में ब्रिटिश सरकार को चलाने की प्रणाली को लागू किया गया। ब्रिटिश पद्धति पर आधारित संस्थाओं को लागू किया गया। गवर्नर जनरल और उसकी परिषद को बंगाल का प्रशासन चलाना पड़ता तथा बम्बई व मद्रास के प्रशासन का निरीक्षण करना होता था। कलकत्ता में जजों के एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई जो ब्रिटिश मापदण्ड से न्याय का प्रशासन चलाता था। कम्पनी के अंतर्गत पहले से ही एक प्रशासनिक प्रणाली विद्यमान थी जैसे कि इसके पास एक सेना थी, करों को एकत्रित करने की प्रणाली तथा न्याय देने का अधिकार था। प्रारंभ में पुरानी व्यवस्था को केवल बढ़ाया मात्र गया। परन्तु सदी के अन्त तक प्रशासन के अंग्रेजी सिद्धांत गहरायी तक प्रवेश कर गये।

इस प्रकार का एक सिद्धांत यह था कि न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग कर दिया गया। दीवानी न्यायालयों को स्थापित किया गया जिनकी अध्यक्षता जजों या न्यायाधीशों द्वारा की जाती थी तथा इनकी लोकप्रियता की पुष्टि इस तथ्य से ही होती है कि 19वीं सदी के प्रारंभ तक इन न्यायालयों द्वारा 20,000 मामलों का निपटारा प्रति वर्ष किया जाता था। कार्नवालिस के शासन के दौरान पुलिस व्यवस्था भी कायम हो गई।

सेवाओं के लिये भारतीय आदमियों पर निर्भरता जारी रही, परन्तु विभिन्न नियमों के आधार पर। जैसे कम्पनी ने सत्ता की सर्वोच्चता प्राप्त की वैसे नवाब एवं उसके सहायकों की शक्ति समाप्त हो गई। एक शक्तिशाली राज्य व्यवस्था का निर्माण किया गया और जनता से यह आशा की गई कि वह उसकी आज्ञाओं का पालन करे। पुरानी परम्पराओं की निरंतरता बनी रही परन्तु जनता को शासित करने के तरीके में मूलभूत परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन तात्कालिक रूप से दिखायी नहीं पड़ता था। कम्पनी के कारिन्दे स्वयं नवाबों की भांति कार्य करते थे और राजस्व इकट्ठा करने के लिये विभिन्न परम्परागत तरीकों एवं मुगल परम्पराओं को अपनाया गया। कम्पनी के प्रशासन एवं नीतियों पर ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण कायम हो गया और ब्रिटेन के हितों को पूरा करने के लिए स्वदेशी सरकार व्यवस्था का स्थान एक साम्राज्यवादी व्यवस्था ने ले लिया।

बोध प्रश्न 3

1) 1720 के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी ने प्रसारवादी नीति को क्यों अपनाया ?

....

....

....

....

....

2) दोहरी शासन प्रणाली से आप क्या समझते हैं और अंग्रेज़ों को इससे क्या-क्या लाभ हुए ? पाँच पंक्तियों में लिखिये।

....

....

....

....

....

1.6 सारांश

यह स्पष्ट हो चुका है कि 18वीं सदी को अब एक मूलतः अन्धकारमय, अराजकतावादी युग नहीं माना जा सकता। मुगल साम्राज्य का पतन ही इस शताब्दी की एक मात्र प्रमुख विशेषता

नहीं थी। क्षेत्रीय शक्तियों का उदय 18वीं सदी के मध्य की लगभग इतनी ही महत्वपूर्ण घटना थी। 18वीं सदी के मध्य में ब्रिटिश शक्ति का उदय तीसरी महत्वपूर्ण घटना थी।

मुगलों से लेकर क्षेत्रीय व ब्रिटिश राजनैतिक व्यवस्थाओं में परम्पराओं की निरंतरता का बने रहना काफी महत्वपूर्ण था। परन्तु इन तीनों प्रकार की राजनैतिक व्यवस्थाओं में विभिन्नतायें भी समान रूप से विद्यमान थीं। एक ही प्रकार की संस्था को जब नयी राजनैतिक व्यवस्था के अंतर्गत मिला दिया गया तो उसने भिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पन्न किया। उदित होने वाली क्षेत्रीय शक्तियाँ तीन प्रकार की थी – उत्तराधिकारी राज्य, नये राज्य और स्वतंत्र राज्य। प्रथम श्रेणी के राज्य राजनैतिक रूप से स्थिर साबित हुए। मराठा द्वितीय श्रेणी के "नये राज्यों" के अन्तर्गत आते थे और अखिल भारतीय स्तर पर साम्राज्य स्थापित करने वालों में वही मुख्य दावेदार थे। परन्तु बाहय चुनौतियों तथा आंतरिक कमजोरियों के संयुक्त रूप ने उनके सपनों को धराशायी कर दिया। जिन राज्यों की स्थापना सिक्खों, जाटों तथा अफगानों द्वारा की गई वे थोड़े समय के लिये ही जीवित रह सके।

क्षेत्रीय शक्तियां मुगलों का स्थान लेने में सक्षम न हो सकी। यद्यपि कुछ राज्य आर्थिक रूप से काफी सम्पन्न थे और कुछ राज्यों ने सैनिक क्षेत्र में भी काफी प्रगति की, फिर भी अखिल भारतीय स्तर की राजनैतिक व्यवस्था को चलाने के लिये पर्याप्त साधनों एवं शक्ति का अभाव था। आधुनिकीकरण के प्रयास काफी सीमित थे। पिछड़े राज्य आसानी से अधिक सक्षम ब्रिटिश व्यवस्था के अधीन आ गये। सर्वोच्चता के लिये फ्रांसीसियों के साथ संघर्ष ब्रिटिश शक्ति के उदय का प्रथम पड़ाव था। बंगाल की विजय द्वितीय एवं निर्णायक चरण था। प्रारंभ में अंग्रेज़ों ने स्वदेशी संस्थाओं के माध्यम से शासन किया परन्तु 1773 से उन्होंने संवैधानिक सुधारों को लागू करना शुरू किया। ब्रिटिश शासन का मुख्य रुझान औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की ओर था परन्तु औपनिवेशिक संस्थाएँ मुगल और अंग्रेज़ी संस्थाओं का मिश्रण थीं। भारत में ब्रिटिश शक्ति ब्रिटेन की विश्व व्यापी साम्राज्यवादी व्यवस्था का एक अभिन्न अंग थी।

1.7 शब्दावली

चौथ: भू-राजस्व का एक चौथाई हिस्सा जो मराठा सरदार पेशवा के द्वारा दी गई भूमि पर इकट्ठा करते थे। इसके बदले में ये सरदार उन इलाकों को बाहरी ताकतों से बचाने के लिए वचनबद्ध थे।

जागीरदारी व्यवस्था: मुगल मंसबदारों या अधिकारियों को नकद पैसे की जगह भूमि देने की व्यवस्था। मंसबदार उस भूमि पर राजस्व इकट्ठा करके अपने सैनिकों को वेतन देते थे। वे उस स्थान का जिसे जागीर कहा जाता था, प्रशासनिक उत्तरदायित्व भी निभाते थे।

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उप-भाग 1.3.2 को देखें।
2) i) ✓, ii) ✕ iii) ✓, iv) X
3) उप-भाग 1.3.4 को देखें।

बोध प्रश्न 2

1) उप-भाग 1.4.1 को देखें।
2) उप-भाग 1.4.2 को देखें।
3) उप-भाग 1.4.3 पर दृष्टि डालें।

4) आपको अपने उत्तर में संक्षिप्त रूप से पिछड़ी हुई सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था, जागीरदारी व्यवस्था के संकट का जारी रहना, और अखिल भारतीय स्तर पर एक स्थिर राजनैतिक व्यवस्था के वैकल्पिक विकास की असफलता जैसे कारणों को बताना चाहिये। इस विषय में आपको विभिन्न इतिहासकारों के दृष्टिकोणों का भी वर्णन करना चाहिये। देखिये उप-भाग 1.4.4

बोध प्रश्न 3

1) आपको अपने उत्तर में अंग्रेज़ों के द्वारा अधिक राजस्व की आवश्यकता के साथ-साथ ब्रिटिश राज्य की बढ़ती दूसरी आर्थिक जरूरतों के बारे में लिखना चाहिये। देखिये उप-भाग 1.5.1

2) देखिये उप-भाग 1.5.3